भारत की स्थापत्य एवं शिल्पकला के क्षेत्र में मेवाड़ ने योगदान ही नहीं, किन्तु मूर्तिकला के शिल्पकला को नई दृष्टि और दिशा भी दी है। विद्वान लेखक ने विस्तार से मेवाड़ के मूर्तिशिल्प पर प्रकाश डाला है।

☐ डा० रत्नचन्द्र अग्रवाल
[निर्देशक—पुरातत्व संग्रहालय विभाग
राजस्थान, जयपुर]

प्राचीन भारतीय मूर्तिकला को मेवाड़ की देन

☐

पिछले १५–२० वर्षों की शोध, खोज एवं पुरातात्त्विक खनन द्वारा मेवाड़ के प्राचीन इतिहास, कला एवं संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। उदयपुर-चित्तौड़ व भीलवाड़ा क्षेत्र में प्राचीन 'प्रस्तर युग' के नानाविध उपकरण प्राप्त हुए हैं जिनसे यह सिद्ध हो चुका है कि इस भूमितल पर आदि-मानव आज से १ लाख वर्ष पूर्व सक्रिय था, वह पत्थर के हथियार बनाकर जीवन व्यतीत करता था, यद्यपि उस समय तक मूर्ति या मृत्भाण्ड कला का आविष्कार नहीं हुआ था। इस प्रसंग में पुरातत्त्ववेत्ता उस समय के आदि-मानव के अवशेष ढूंढ़ने में लगे हैं। इस समय के विविधानेक प्रस्तरास्त्र हमें चित्तौड़ की गम्भीरी नदी के किनारे से प्राप्त हो सकते हैं व अन्य कई स्थानों पर भी। अभी हाल में भीलवाड़ा जिले में 'बागोर' की खुदाई द्वारा बाद के युग की सामग्री प्रकाश में आयी है जिसका सविशेष अध्ययन किया जा रहा है।

सन् १९५५–५६ में मुझे उदयपुर नगर के पास एवं प्राचीन आघाटपुर (वर्तमान आयड़ या आहाड़) की खुदाई करने का सुअवसर मिला था, जिसके लिए मैं राजस्थान-शासन का आभारी हूँ। इस धूलकोट नामक टीले को लोग 'ताँबावती' नगरी के नाम से पुकारते हैं जिसकी पुष्टि खुदाई द्वारा भलीभाँति सम्पन्न हुई है। यहाँ सबसे नीचे का धरातल लगभग ४ हजार वर्ष पुराना है और सिन्धु सभ्यता के बाद की सामग्री प्रस्तुत करता है। मेवाड़ में सिन्धु-सभ्यता के उपकरणों का प्रभाव इस समय पड़ा जिसके परिणामस्वरूप यहाँ आयड़ की मृद्‌भाण्डकला में 'डिश ऑन स्टैन्ड' (Dish on stand) संज्ञक पात्र विशेषों का अनुकरण स्थानिक मृद्‌भाण्डकला में सम्पन्न हुआ। साथ ही ईरानी कला के प्रभाव की द्योतक सामग्री भी मिली जिसमें सफेद धरातल पर काले मांडने वाले कुछ मिट्टी के बर्तन के टुकड़े भी हैं जो 'सिआल्क' (Sialk) की कला से साम्य रखते हैं। आयड़ के इस धरातल विशेष का काल-निर्णय तो 'कार्बन १४' विश्लेषण के आधार पर लगभग ईसा पूर्व १८०० वर्ष सिद्ध हुआ है। इस समय यहाँ 'लाल और काली धरातल' के मृद्‌भाण्डों का प्रयोग होता था जिन पर श्वेत रंग के नानाविध मांडने बने हुए हैं—यह यहाँ की कला विशेष थी और कई सौ वर्ष तक यहाँ पनपी। कालान्तर में इस सभ्यता विशेष का आहड़ की नदी—बेड़च—बनास व चम्बल नदियों से सुलभ साधनों द्वारा उत्तर की ओर प्रसार हुआ। भारतीय पुरातत्त्वविदों ने अब इसे सिन्धुसभ्यता की तरह एक पृथक् सभ्यता मान कर इसको "**आयड़ सभ्यता**" का नाम भी प्रदान कर दिया है। इसके अन्य स्थल 'गिलूण्ड' (रेलमगरा में भगवानपुरा के समीप) नामक खेड़े की खुदाई भारतीय पुरातत्त्व विभाग ने कराई थी। यहां के एक मृद्‌भाण्ड पर मांडी गई पुरुषाकृति बहुत महत्त्वपूर्ण है यद्यपि इस प्रकार की सामग्री आयड़ से नहीं मिली है। आयड़ की मिट्टी के मणके तो 'अनौए' व 'ट्रौए' की कला से साम्य रखते हैं और उस समय मेवाड़ व विदेशों के पारस्परिक सम्बन्धों पर पर्याप्त प्रकाश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डालते हैं। आयड़ में उस समय ताँबे का प्रयोग होता है—ऐसे ताम्रपरशु व चाकू मिले हैं और साथ में तांबा गलाने की मट्टी भी। ताँबा तो इस क्षेत्र की समीपवर्ती खानों से प्राप्त किया जाता होगा।

आयड़ की खुदाई से मिट्टी की बनी पशुओं की आकृतियां तो मिली हैं परन्तु पुरुषाकृतियां या प्रस्तर प्रतिमाएँ अद्यावधि अज्ञात हैं। **मेवाड़ में शुंग काल से पूर्व (ईसा पूर्व प्रथम द्वितीय शती) की कोई मूर्ति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।** चित्तौड़ के पास 'शिवि' जनपद का प्रख्यात केन्द्र 'मध्यमिका' (अर्थात् 'नगरी') इस सम्बन्ध में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। खुदाई द्वारा यहाँ शुंगयुगीन मृण्मूर्तियां मिली हैं—इनमें से एक फलक पर खड़ी देवी **वसुधारा** की है जिसने अपने एक हाथ में 'मत्स्य' (मछली) धारण कर रखा है। इस प्रकार की मृण्मूर्तियां मथुरा क्षेत्र और राजस्थान में रैढ़ (टोंक के पास) नामक स्थानों पर पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुई हैं। नगरी की इस मृण्मूर्ति में भी मथुरा कला का प्रभाव झलकता है और यह सिद्ध करता है कि मौर्यकाल के बाद इस क्षेत्र के कलाकार भारतीय कला केन्द्रों से सम्बन्ध स्थापित कर रहे थे।

नगरी में उस समय 'भागवत धर्म' को विशेष महत्व प्राप्त था। यहाँ अश्वमेध-यज्ञ करने वाले एक 'सर्वतात' नामक राजा ने 'नारायणवाटिका' हेतु विशाल परकोटे का निर्माण करा तत्सम्बन्धी लेख को इस प्रस्तर-परकोटे की शिलाओं पर कई स्थानों पर उत्कीर्ण भी कराया था। एक शिलालेख तो आज भी इस परकोटे का अंग बना हुआ है और अन्य खण्ड उदयपुर के 'प्रताप संग्रहालय' में सुरक्षित हैं। इस 'शिला-प्राकार' के बीच **संकर्षण-वासुदेव** की पूजा होती थी यद्यपि उस समय की कोई भी कृष्ण-बलराम प्रतिमा अभी तक नगरी से प्राप्त नहीं हुई है। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि मध्यमिका की नारायणवाटिका में लकड़ी की मूर्तियाँ रही होंगी जो कालान्तर में नष्ट हो गई हों या यहां किसी स्थण्डिल पर "आयागपट्ट" के रूप में उकेरी जाकर पूजान्तर्गत हों। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रहे कि शुंग काल में प्रस्तर प्रतिमाएँ पर्याप्त संख्या में बनने लगी थीं। मथुरा एवं विदिशा क्षेत्र में यक्ष-यक्षियों की पुरुषाकार मूर्तियां शुंग काल में बनायी गयीं और प्रायः प्रत्येक गांव में पूजी जाने लगी थीं। अपरंच, इसी युग में उष्णीषी 'बलराम' की स्वतंत्र मूर्तियां भी विद्यमान थीं। ऐसी एक विशाल प्रतिमा लखनऊ के राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है। जब मेवाड़ के सूत्रधार नगरी में इतने बड़े प्रस्तर परकोटे का निर्माण करा सकते थे और पत्थर सुलभ था तो लकड़ी की मूर्तियां बनवाने का कोई तात्पर्य समझ में नहीं आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यमिका की नारायणवाटिका में प्रस्तर प्रतिमाएं अवश्य रही होंगी जो मुसलमानी आक्रामकों के द्वारा खण्डित कर दी गई होंगी। नगरी पर यवनों का आक्रमण हुआ और बाद में मुसलमानों ने भी पर्याप्त ध्वंस कार्य किया था। इसके तनिक बाद के मथुरा के 'मोरा कुएँ' वाले शिलालेख में **वृष्णिवीरों** की मूर्तियों का उल्लेख किया गया है—वहां कुछ ऐसी मूर्तियाँ भी खण्डितावस्था में मिली हैं जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित हैं। नगरी के शुंगकालीन शिलालेख में **'संकर्षण-वासुदेवाभ्यां पूजा शिलाप्राकारो'** द्वारा यह आभास होता है कि मध्यमिका के इस वैष्णव भवन में इन दो वृष्णिवीरों की मूर्तियाँ, किसी स्थण्डिल पर पूजा हेतु प्रतिष्ठित रही होंगीं। ये पञ्चरात्र भाव की द्योतक नहीं हैं क्योंकि यहाँ पहले **संकर्षण** का उल्लेख हुआ है—ये तो वृष्णिवीरों की थीं। खेद है कि इनके निश्चित स्वरूप की पहचान करना संभव नहीं, परन्तु मथुरा की बलराम प्रतिमा द्वारा कुछ अनुमान तो किया ही जा सकता है।

मेवाड़ क्षेत्र से ईसा की प्रारंभिक-शतियों की प्रस्तर प्रतिमाएँ अभी तक तो अज्ञात हैं। आयड़ की खुदाई द्वारा ऊपरी धरातल तो ईसा की प्रथम—तृतीय शती की मानी जा सकती है। उस समय यहां मिट्टी से बनी खपरैलों का प्रयोग होता है। तत्कालीन कुषाण खेड़ों से साम्य रखती हुई मृण्मूर्तियां आयड़ में मिली हैं जो स्थानिक 'पुरातत्त्व संग्रहालय' में सुरक्षित एवं प्रदर्शित हैं। इनमें कुछ 'वोटिव टैंक' के खण्ड शिर विहीन कुम्भोदर कुबेर या गणपति, हाथ उठाकर नृत्यमुद्रा में प्रस्तुत नर्तकी······ये कुछ मृण्मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। इनमें कला-सौष्ठव को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है।

ईसा की तृतीय शती (संवत् २८२—२२७ ईसवी) का बना एक 'यूपस्तंभ' आज भी गंगापुर (भीलवाड़ा) से तीन मील दूरस्थ 'नाँदसा' ग्राम के तालाब के बीच गड़ा हुआ है। इस पर एक शिलालेख खुदा है। यहां के अन्य यूपस्तंभ का एक खण्ड उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है। इन स्तंभों द्वारा उस समय मेवाड़ की तक्षणकला का तो आभास होता है परन्तु तत्कालीन मूर्तियां सर्वथा अज्ञात हैं। सम्भव है, खुदाई द्वारा इस युग की कला पर कुछ भी

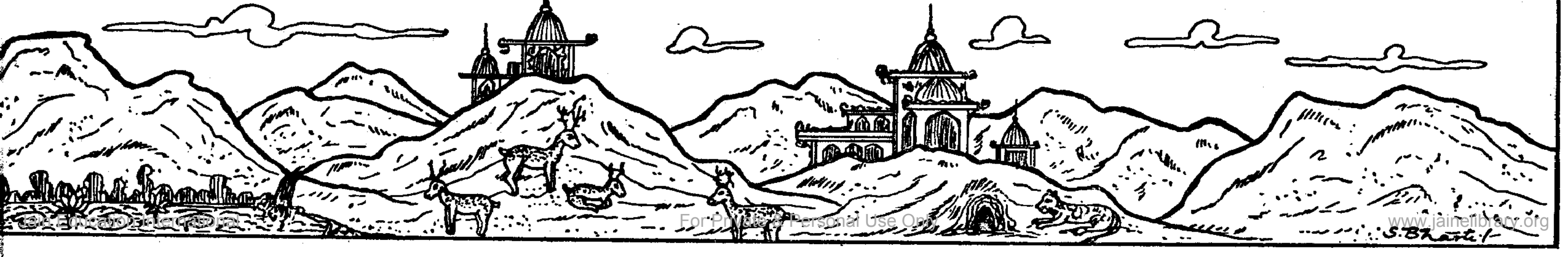

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश पड़ सके। ईसा की ५वीं व छठी शतियां मेवाड़ी कला के इतिहास का अनोखा युग था। उस समय गुप्तकला का पर्याप्त प्रभाव फैल चुका था और स्थानिक सूत्रकार व स्थपति पूर्णरूप से सक्रिय हो चुके थे। मध्यमिका नगरी के पांचवीं शती के शिलालेख में विष्णु-मंदिर का उल्लेख है और छठी शती के लेख में 'मनोरथस्वामि'—भवन का। यहां एक गुप्तकालीन मंदिर के अवशेष भी विद्यमान हैं जो ईंटों का बना था। इस मंदिर के बाहरी भागों पर नाना प्रकार की मिट्टी से बनी मूर्तियां जड़ी थीं जिनमें पशु-पक्षी, कमलाकृति अभिप्राय, पुरुष-स्त्री-शीर्ष आदि महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव में वह युग था मिट्टी की ईंटों के मंदिरों का। ऐसी कुछ गुप्तकालीन मृण्मूर्तियां अजमेर के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं और कुछ फलक पूना के दक्कन कॉलिज के पुरातत्त्व-विभाग में प्रदर्शित हैं। इन फलकों में देवी-देवताओं का अंकन तभी तक अज्ञात है। परन्तु उसी समय नगरी के मंदिर के बाहर सुविशाल मकर-प्रणाली की व्यवस्था की गई थी, ताकि गर्भगृह से पूजा का जल निकल सके। यह कलात्मक प्रस्तर-प्रणाली आज भी तत्रस्थ विद्यमान है। वहां पास में वृषभ-स्तम्भ-शीर्ष व अन्य प्रस्तर शिलाएँ भी सुरक्षित हैं जो मेवाड़ की गुप्तकला की निधियां हैं। एक विशाल तोरण की व्यवस्था की गयी, जिसके दोनों ओर के आयताकार स्तम्भों पर युगलाकृतियां प्रेममुद्रा में प्रदर्शित हैं। एक स्तम्भ के सबसे नीचे के भाग पर स्थानक शिव 'त्रिशूल' लिए खड़े हैं। सबसे ऊपरी भाग पर 'कीर्त्तिमुख' अभिप्राय खुदा है। इन स्तम्भों के ऊपर एक शिला पर 'किरातार्जुनीय' संवाद पृथक्-पृथक् खण्डों में उत्कीर्ण है जो भारतीय प्रस्तरकला की अनुपम देन है। समूचे राजस्थान में यह अभिप्राय-विशेष अन्यत्र उपलब्ध नहीं हुआ। दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में भी नगरी से प्राप्त एक शिला खण्ड पर पुरुष-स्त्री की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। नगरी की उपर्युक्त शिला में एक छोर पर नरेश शिव का अंकन बहुत महत्त्वपूर्ण है और यह सिद्ध करता है कि उत्तरी भारत के कलाकारों ने नटराज शिव को बहुत पहले से ही अपनी कृतियों में दर्शाया था। नगरी का यह नटराज तो राजस्थानी कला में नरेश का प्राचीनतम अंकन प्रस्तुत करता है। मध्यमिका के शिल्पियों की ये कलाकृतियां भारतीय कला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सामग्री मानी जा रही है। नगरी से प्राप्त 'आमलक' खण्ड आजकल स्थानिक पाठशाला के आँगन में पड़ा है, जिससे यह आभास होता है कि नगरी के मंदिर पर शिखर विद्यमान था और उसके ऊपर था खरबूजे की तरह का मोटा आमलक। पूर्व-मध्ययुग में इसकी आकृति तनिक चपटी हो जाती थी। इस दृष्टि से भी मेवाड़ी कला की यह आमलक-शिला भारतीय स्थापत्य के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करेगी। नगरी के उपर्युक्त तोरण स्तम्भों पर युगलाकृतियां समीपवर्ती 'दशपुर' (मंदसोर) के पास सोंदनी एवं 'खिलचीपुर' की शिल्पकला से साम्य रखती हैं—ये एक ही कला के अन्तर्गत मानी जा जा सकती हैं। सोंदनी से प्राप्त तत्कालीन एक शिलापट्ट आजकल दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है—यहाँ पर विद्याधर स्वप्रेयसी सहित आकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं।

ईसा की ५वीं-छठी शतियों में उदयपुर-डूंगरपुर व ईडर (शामलाजी—खेड़ब्रह्मा) क्षेत्र में प्रतिमाएं प्रायः 'पारेवा' (Pareva) पत्थर की बनायी गई, जो नीले-हरे रंग की हैं। इनको क्रमशः कपड़े से रगड़ कर काला रंग दिया जा सकता है और यह पहचानना कठिन हो जाता है कि यह काला संगमरमर है या साधारण पारेवा पत्थर। इस समय मेवाड़ में शिव-शक्ति-पूजा को सविशेष महत्त्व दिया गया। शिव के साथ-साथ मातृकाओं की बहुत प्रतिमाएँ पूजा हेतु बनने लगी। जिनमें ये मातृकाएँ प्रायः शिशु सहित प्रदर्शित की जाती थीं और प्रायः स्वतंत्ररूपेण पूजा हेतु प्रतिष्ठित की जाती थीं। इनमें ऐन्द्री, ब्राह्मी, कौमारी, माहेशी, अम्बिका.........आदि विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। उदयपुर जिले में कुरावड़ के पास 'जगत' नामक ग्राम में ईसा की छठी शती में एक मातृका मंदिर रहा होगा जो ईंटों का बना था—इसके कुछ अवशेष मुझे खुदाई में मिले थे। यहाँ से प्राप्त तत्कालीन प्रस्तर प्रतिमाएं उदयपुर के प्रताप संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही हैं जिनमें शिशुक्रीड़ा ऐन्द्री व आम्रलुम्बिधारिणी अम्बिका प्रमुख है। ऐन्द्री के एक हाथ में वज्र स्पष्ट है, परन्तु सिर पर मुकुट खटकता है जबकि उनके प्रियदेव 'इन्द्र' के सिर पर किरीट मुकुट का होना परमावश्यक है। उदयपुर जिले में ही 'परसाद' ग्राम के पास 'तनेसर' का एक आधुनिक शिव-मंदिर पहाड़ी की तलहटी में बना हुआ है। यहां एक चबूतरे पर प्राचीन प्रतिमाएँ तो मेवाड़ की ५वीं-छठी शती की अनुपम निधियां थीं। सर्वप्रथम गणपति का शीर्षभाग है जहां गणेश के सिर पर अलंकरण का अभाव उनकी प्राचीनता का सूचक है। द्वितीय मूर्ति है 'शक्ति एवं कुक्कुट धर–स्कंद कार्त्तिकेय' की, जो शामलाजी से प्राप्त व बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित तत्कालीन स्कंद मूर्ति से पूर्ण साम्य रखती है। इस स्कंद मूर्ति के पास, तनेसर ग्राम में ही, अन्य मूर्तियां मातृभाव की द्योतक हैं, कहीं माता ने गोद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में शिशु को धारण किया है, अन्यत्र शिशु माता का हाथ पकड़ रहा है, कहीं माता उसे स्तन-पान करा रही है या अन्यत्र वह माता का हाथ पकड़ कर खेलना चाहता है। इस वर्ग की मूर्तियों में प्रत्येक मातृका के सिर के पीछे प्रभा-मण्डल बना है। क्या इन्हें साधारण मातृका प्रतिमाएँ समझना चाहिए ?—नहीं, ये तो स्कंद सहित ६ कृत्तिकाओं के नानाविध स्वरूपों का प्रदर्शन करती हैं जिन्होंने जन्म के उपरान्त शिवपुत्र स्कंद का पालन-पोषण किया था और जिनके ही कारण उसका नाम **कार्त्तिकेय** पड़ा था। ये प्रतिमाएँ मूर्त्तिविज्ञान की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं और पहली बार भारतीय मूर्त्तिकला में **'स्कंद व कृत्तिका'** अभिप्राय का अंकन प्रस्तुत करती हैं। ये सब प्रतिमाएं तनेसर के तत्कालीन 'स्कंद-मंदिर' में पूजार्थ रक्खी गई होंगी। इनसे स्कंद के साथ-साथ कृत्तिका-मातृकाओं का स्वतंत्र-पूजन एवं प्रतिमा–निर्माण सिद्ध हो जाता है। इस दृष्टि से भी मेवाड़ की ये मूर्तियां अति विलक्षण हैं।

उदयपुर नगर के पास 'बेदला' ग्राम के बाहर एक आधुनिक मंदिर के अन्दर की **'हरिहर'** प्रतिमा भी विवेच्य है। यह लगभग ४ फुट ऊँची होकर गुप्तोत्तरयुगीन कला में विष्णु व शिव के एक रूप की अभिव्यक्ति करती है। राजस्थान की अद्यावधि ज्ञात हरिहर-मूर्तियों की श्रेणी में प्राचीनतम होनी चाहिए। यह भी पारेवा पत्थर की बनी है। शिव की बाईं ओर का अर्धभाग विष्णु का सूचक है जहाँ उन्होंने ऊपर के हाथ में चक्र को प्रयोग-मुद्रा में धारण कर रक्खा है और नीचे के हाथ में शंख; शिवभाग में पुरुषाकार त्रिशूल ऊपरी दाहिने हाथ में विद्यमान है। सिर के आधे भाग में विष्णु का किरीट मुकुट व दूसरी ओर चन्द्रमौलि लांछन सहित जटाजूट भी प्रतिमा के सौष्ठव में वृद्धि कर रहे हैं।

तनेसर से प्राप्त एक मातृका प्रतिमा अभी राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, हेतु प्राप्त हुई है—यह राजस्थान शासन से भेंट–स्वरूप मिली है—यहाँ देवी कुछ झुकी मुद्रा में दिखाई देती है और भारतीय शिल्प-कला की असाधारण कृति है। चित्तौड़ क्षेत्र में पूर्वमध्ययुगीन कला के स्वरूप चित्तौड़ दुर्गस्थ कुम्भश्याम-मंदिर व कालिका-मंदिर विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। कुम्भश्याम-मंदिर का बाहरी जंघा भाग ८वीं शती का है—पीछे प्रधान ताक में नीचे शिव-पार्वती-विवाह प्रतिमा जड़ी है व बाईं ओर जंघाभाग पर स्थानक एवं जटाधारी द्विबाहु लकुलीश। इस आशय की लकुलीश मूर्तियां अत्यल्प संख्या में मिली हैं, जहां उन्हें खड़े दिखाया गया हो। चित्तौड़ दुर्ग की अन्य शिव-प्रतिमा में भी यही भाव झलकता है, परन्तु वहाँ शिव-लकुलीश के एक साथ में परशु भी है और जंघा पर सिंहचर्म प्रदर्शित है। चित्तौड़ का कालिका-मंदिर प्रारंभ में (अर्थात् मूलतः) **सूर्यमंदिर** था जिसके निजगर्भ-गृह-द्वार-ललाट-बिम्ब पर आसनस्थ सूर्य-प्रतिमा जड़ी है और तथैव बाहरी ताकों में। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ की व्यवस्था की गई है और गर्भगृह जंघा-भाग पर दिक्पाल प्रतिमाएं जड़ी हैं। यहाँ पूर्वपरम्परानुसार सोम (चंद्र) की प्रतिमा भव्य है। इसके सिर के पीछे अर्ध-चन्द्राकृति खुदी है। यह राजस्थान की मूर्तिकला में प्राचीनतम चन्द्र–प्रतिमा स्वीकार की जा सकती है। इसके पास 'अश्वमुख अश्विन' प्रतिमा जड़ी है और इसी प्रकार दूसरी ओर भी अन्य 'अश्विन' की। इस मंदिर के बाहर 'अश्विनी कुमारों' व 'चन्द्र' की ये शिल्पाकृतियां मूर्तिविज्ञान की महत्त्वपूर्ण निधियां हैं। इस सूर्य-मंदिर के प्रदक्षिणापथ से बाहर भी बाह्य-जंघा की व्यवस्था की गई है जहां क्रमशः नानाविध प्रतिमाएं मूलतः जड़ी गई थीं। इनमें बाईं ओर मध्यवर्ती प्रतिमा समुद्रमंथन-भाव की अभिव्यक्ति करते हुए विष्णु के कच्छपावतार का भी प्रदर्शन कर रही है। यहां कच्छप की पीठ पर मथानी रखकर मन्थन-क्रिया सम्पन्न की जा रही है। इस सूर्य-मंदिर के बाहर एक विशाल कुण्ड के बीच बना लघु मंदिर देवी-भवन था और सम्भवतः ८वीं शती में बनाया गया था।

भीलवाड़ा जिले में मेनाल (महानाल का मध्ययुगीन महानालेश्वर नामक शिवालय तो चाहमान-कला का महत्त्वपूर्ण स्मारक है और पास ही १२वीं शती का तत्कालीन शैवमठ, जिसकी दीवार पर संवत् १२२५ का शिलालेख खुदा है। मठ के स्तम्भों पर घटपल्लव अभिप्राय अंकित हैं। निजमंदिर में प्रवेश करने से पहले एक पंक्ति में तीन लघु देवकुलिकाएं पूर्व मध्ययुगीन प्रतीत होती हैं—वे चित्तौड़ के सूर्य-मंदिर व ओसियां के प्रतिहार कालीन स्थापत्य व शिल्प से सम्बन्धित हैं। मेनाल की इन दो देवकुलिकाओं के पार्श्व भाग में नटराज शिव की मूर्तियां जड़ी हैं और अंतिम देवकुलिका के बाहर अर्धनारीश्वर शिव की। इसी युग की जैन कला की एक भव्य **कुबेर** प्रतिमा भीण्डर क्षेत्र के 'बांसी' नामक स्थान पर मिली थी और आजकल 'प्रताप संग्रहालय' उदयपुर में सुरक्षित है। भारतीय शिल्प-कला की यह अलौकिक सुन्दर एवं सुघड़ मूर्ति है—पारेवा पत्थर की इस प्रतिमा में वाहन सहित आसनस्थ धनपति कुबेर के एक हाथ में 'नकुलक' (रुपये की थैली) है और दूसरे में बिजोरा फल। कुबेर के सिर पर जिन-तीर्थंकर की लघुमूर्ति खुदी है और

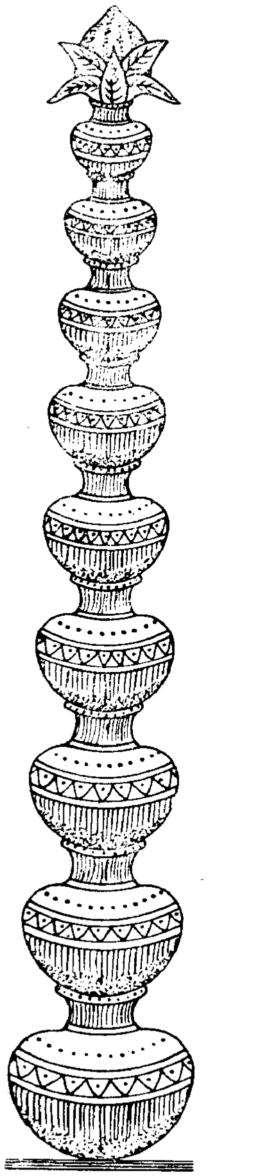

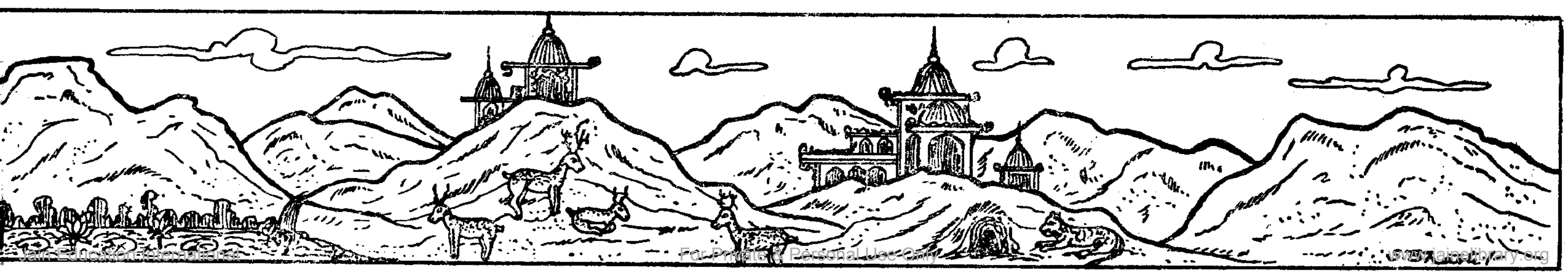

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथैव अन्य जिनाकृति मुकुट के बीच भी विद्यमान है। तक्षणकार ने इस अभिप्राय-विशेष की पुनरुक्ति कर इसे सर्वथा **जैन-कुबेर** बना दिया है। इसके अभाव में यह सर्वसाधारण कुबेर की मूर्ति मानी जाती। बांसी के प्राचीन स्थल के खण्डहर कई मील की दूरी तक बिखरे पड़े हैं जहाँ पर बड़ी-बड़ी ईंटें प्रायः मिलती रहती हैं। यह स्थलविशेष निश्चित ही गुप्तोत्तर-युग में पर्याप्त समृद्धिशाली रहा होगा। इसी प्रकार धुलेव-केसरियाजी से लगभग ८ मील दूरस्थ 'कल्याणपुर' का प्राचीन स्थल भी अवशेष प्रस्तुत करता है। इस स्थान से प्राप्त कई शैव प्रतिमाएं आजकल उदयपुर के महाराणा भूपाल कॉलिज में सुरक्षित की गई हैं। कल्याणपुर ग्राम के बाहर आधुनिक शिवालय के अन्दर एक 'चतुर्मुख शिवलिंग' पूजान्तर्गत है। यह भी पारेवा पत्थर का बना है और ७–८ वीं शती की मोहक कलाकृति है। यहाँ ऊपरी भाग के चारों ओर शिवमस्तक बने हैं और उनके नीचे ब्रह्मा-विष्णु-महेश व सूर्य की स्थानक मूर्तियाँ खुदी हैं। यहाँ सूर्य व उनके अनुचरों को ईरानी वेशभूषा में प्रस्तुत किया गया है। कल्याणपुर से प्राप्त एक विशाल शिवमस्तक प्रताप संग्रहालय, उदयपुर, की शोभा बढ़ा रहा है। यह मध्ययुगीन प्रतिमा यूरोप के संग्रहालयों में भारतीय-कला-प्रदर्शिनी में भी भेजी गयी थी। यहां शिव-कुण्डलों में **लक्ष्मी व सरस्वती** की आकृतियाँ इस अभिप्राय विशेष की दृष्टि से अनोखी हैं। यह मूर्ति भी पारेवा पत्थर की बनी है। कल्याणपुर से प्राप्त दो प्रस्तर प्रतिमाएं नाग-नागी एवं नागी अभिप्राय को अभिव्यक्त करती हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि उस समय मेवाड़ में नागपूजा को पर्याप्त मान्यता दी जाती थी। उदयपुर नगर के पास 'नागदा' नामक ग्राम आज तक विद्यमान है जिसका प्राचीन नाम 'नागह्रद' तो वि० संवत् ७१८ के शिलालेख में उपलब्ध है।

पूर्वमध्ययुगीन धातुकला की दृष्टि से आयड़ ग्राम से प्राप्त कांस्य-मूर्ति बहुत उपयोगी है। यह लगभग पुरुषाकार है और जिन तीर्थंकर को ध्यानावस्था में प्रस्तुत करती है। अभी तक इतनी पुरानी धातु प्रतिमा मेवाड़ में अन्यत्र नहीं मिली है। आजकल यह आयड़ के पुरातत्त्व-संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही है। मध्ययुग में आयड़ व्यापार एवं कला का भी एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। यह गुहिल नरेशों की राजधानी था। यहां कई प्राचीन मंदिर मेवाड़ की गुहिल कला व स्थापत्य के ज्वलन्त प्रतीक रूप में आज भी विद्यमान हैं। आयड़ की महासतियों के अहाते के बाहर 'गंगोद्भेद' कुण्ड का निर्माण गुहिल नृपति भर्तृभट्ट के राज्य काल में संवत् १००१ में कराया गया। तत्सम्बन्धी शिलालेख आजकल उदयपुर के महाराजा भूपाल कॉलेज में सुरक्षित है। इस लेख में 'आदिवराह' नामक किसी व्यक्ति द्वारा आदि-वराह-विष्णु-मंदिर में 'आदि-वराह-प्रतिमा' की प्रतिष्ठा का उल्लेख किया गया है। कुण्ड के पास ही दो प्राचीन मंदिर हैं—बड़ा मंदिर बहुत ऊँचा है, इसके गर्भगृह के बाहर दाहिनी ओर शिव—लकुलीश-की मूर्ति जड़ी है। निज गंगोद्भेद कुण्ड के अन्दर ताकों में जड़ी हुई कई दर्जन प्राचीन प्रतिमाएँ मेवाड़ की मध्ययुगीन शिल्प का बखान करती हैं। इनमें से सप्ताश्वरथ में विराजमान सूर्य व चौदह हाथ वाले नृसिंह-वराह-विष्णु की दो भव्य मूर्तियाँ आयड़ संग्रहालय में सुरक्षित कर दी गई हैं। मेवाड़ में सूर्य-पूजा को भी पर्याप्त मान्यता प्राप्त थी। मध्ययुग में यहाँ कई सूर्य-मंदिरों का निर्माण हुआ था जिनमें से **नांदेसमा** (गोगूंदा के पास) का सूर्य-मंदिर तो प्रायः नष्ट हो चुका है परन्तु उदयपुर से १३ मील दूरस्थ व दारोली ग्राम के पास का सूर्य-मंदिर बहुत भव्य है—यह बेड़च नदी के बायें किनारे पर पूर्वोन्मुख होकर बना है। मंदिर के सभा-मण्डप में सुरसुन्दरी-प्रतिमाएँ जुड़ी हैं व जंघा-भागों पर भी। गर्भगृह की प्रधान ताकों में सूर्य भगवान की कई प्रतिमाएँ आज भी सुरक्षित हैं। यह मध्ययुगीन सूर्य-मंदिरों की श्रेणी में सर्वोत्तम माना जा सकता है; यद्यपि मन्दिर के शिखर भाग का सर्वथा जीर्णोद्धार हो चुका है।

आयड़ ग्राम के अन्दर कई जैन मन्दिर पूजान्तर्गत हैं। इनमें पुलिस स्टेशन के सामने व ग्राम के बीच के मन्दिर लगभग ११वीं शती की शिल्पकला का परिचय देते हैं। आयड़ पुलिस चौकी के पीछे खेत में विद्यमान मन्दिर भी उल्लेखनीय है—इसका शिखर तो प्रायः आधुनिक है—इसे **'मीरां-मन्दिर'** कहा जाता है, परन्तु यह ठीक नहीं। इससे मीरां का कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि यह ईसा की १०वीं शती में बना होगा। मन्दिर के पीछे प्रधान ताक में लक्ष्मीनारायण-मूर्ति तत्कालीन है और नीचे बंसी बजाते 'कीचक' की, जिसे भ्रमवश लोग कृष्ण समझकर मंदिर को मीरां से सम्बन्धित मान लेते हैं। यह अभिप्राय राजस्थान में सिरोही क्षेत्रान्तर्गत 'वर्माण' के स्तम्भ-शीर्ष द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है। आयड़ के मीरां-मंदिर के जंघाभागों में दिक्पाल व सुर-सुन्दरी प्रतिमाओं के साथ कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण फलकों का विवेचन करना बहुत आवश्यक है क्योंकि ये मेवाड़ के मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से असाधारण हैं। एक स्थल पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दबाबा गौ-बैल सहित प्रदर्शित हैं व दूसरी ओर यशोदा मैया दधि-मंथन कर रही हैं और पास खड़े कृष्ण माखन चुरा रहे हैं। दूसरे फलक में कुछ वणिक् 'तराजू' से सामान तोलते हुए दिखाई देते हैं—इस प्रकार की तराजू आज भी 'पंसारी' लोग प्रयोग में लाते हैं। तृतीय शिला पर 'लोहकार' धौंकनी द्वारा अग्नि प्रज्वलित कर लोहे के टुकड़े को गर्म कर रहा है और पास बैठा अन्य लोहार हाथ में हथौड़ा लिए उस लोहे के टुकड़े को एक 'ठिये' पर रखकर पीट रहा है। ये प्रस्तर फलक तत्कालीन मेवाड़ (१०वीं शती) के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की आकर्षक झांकी प्रस्तुत करते हैं।

मेवाड़ के सांस्कृतिक जीवन में १०वीं शती को स्वर्णिम-युग समझना अनुचित न होगा। यह पर्याप्त समृद्धिशाली समय था जबकि यहाँ बहुत से देवभवनों का निर्माण हुआ और नये-नये अभिप्राय शिल्पियों के माध्यम से कला में अभिव्यक्त किये गये। उदयपुर जिले के कई मंदिरों का उल्लेख किया ही जा चुका है। उदयपुर नगर से केवल १३ मील दूरस्थ व गोगुन्दा रोड़ पर 'ईसवाल' का विष्णु-मंदिर पञ्चायतनशैली का है। मध्यवर्ती मंदिर के बाह्य भागों पर जड़ी दिक्पाल प्रतिमाएँ प्राचीन परम्परानुसार द्विबाहु हैं। प्रवेश करते समय दाहिनी ओर गणेश-मंदिर है व उसके सामने कुबेर का। पीछे सूर्य व देवी के लघु मन्दिर बनाकर 'पंचायतन' भाव को पूरा किया गया।। ईसवाल से आगे खमणोर रोड़ पर जाकर, खमणोर से ३ मील दूर 'ऊनवास' का पिप्पलाद माता का मंदिर संवत् १०१६ में बना था—सम्भवतः गुहिल अल्लट के राज्यकाल में। निज मंदिर के पीछे प्रधान ताक में गौरी-पार्वती की मूर्ति जड़ी है। यह बहुत साधारण-सा दुर्गाभवन है—यहाँ दिक्पाल व सुरसुन्दरी प्रतिमाओं का सर्वथा अभाव है।

उदयपुर-कैलाशपुरी-नाथद्वारा रोड पर उदयपुर से १३ मील दूरस्थ कैलाशपुरी अर्थात् श्री **एकलिंगजी** के निजमंदिर से ऊपर की पहाड़ी पर विक्रम संवत् १०२८ का बना **लकुलीश-मंदिर** भारतीय स्थापत्य की महत्त्वपूर्ण निधि है। यह शिलालेख लकुलीश सम्प्रदाय के इतिहास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। निजमंदिर के **गर्भगृह** में काले पत्थर की बनी पुरुषाकार लकुलीश मूर्ति शिव को ऊर्ध्वरेतस् स्वरूप में प्रस्तुत करती है। प्रवेश के बांयी ओर शिलालेख जड़ा है व दूसरी ओर की ताक में शारदा-सरस्वती की भव्य प्रतिमा। इसके नीचे चौकी पर एक पंक्ति का लगुलेख खुदा है। प्रस्तुत मंदिर के सभा-मण्डप के दोनों ओर वायु व धूप प्रवेश हेतु जालियों की व्यवस्था की गई है, परन्तु समूचा जंघा-भाग व पार्श्वभाग सर्वथा मूर्ति विहीन है— यहाँ मूलतः किसी भी प्रकार की सुरसुन्दरी या दिक्पाल मूर्तियाँ नहीं जड़ी गयी थीं। अतः १० वीं शती के स्थापत्य की दृष्टि से यह देवभवन भारतीय मध्ययुगीन कला की एक महत्त्वपूर्ण देन है।

कैलाशपुरी के पास ही, एक मील की दूरी पर, नागदा ग्राम के प्राचीन मंदिर के अवशेष भी इस सन्दर्भ में विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। यह स्थान ७वीं शती में वैष्णव सम्प्रदाय का केन्द्र था जैसा कि इस स्थान से प्राप्त संवत् ७१८ के शिलालेख द्वारा आभास होता है। संवत् १०८३ के अन्यलेख में भी इस स्थान का नाम 'नागह्रद' अंकित है। नागद्दा के तालाब के किनारे पर एक ओर बड़े चबूतरे पर दो बड़े मंदिर बने हैं जिन्हें **सास-बहू** मंदिर नाम से पुकारा जाता है। इन दोनों ही मंदिरों के गर्भगृह के बाहर ताकों में ब्रह्मा विष्णु व शिव की प्रतिमाएँ जड़ी हैं—दोनों ही के पीछे प्रधान जंघा के ऊपर बलराम मूर्ति भागवत-भाव की पुष्टि करते हैं और इसी शृंखला में बाजू की एक ओर **दाशरथिराम** व दूसरी ओर **परशुराम** की लघु प्रतिमाएँ जड़ी हैं। तक्षणकार ने राम भाव (संकर्षण बलराम-दशरथपुत्र राम, परशुराम) को प्रधानता दी है। मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से ये दोनों प्रधान मन्दिर व पास की लघुदेवकुलिकाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं—इनके में एक पृथक् पुस्तक लिखी जा सकती है। यहाँ संक्षेप में कुछ ही विलक्षण मूर्तियों का उल्लेख सम्भव होगा। सास-बहू मंदिर के बीच पीछे की ओर एक लघु मन्दिर के पीछे की ताक में आसनस्थ देव प्रतिमा में **शिव व सूर्य के एक रूप** को दर्शाया गया है—इसे **'मार्त्तण्ड भैरव'** की संज्ञा दी जानी चाहिए। चतुर्बाहु एवं आसनस्थ देव ने छाती पर सूर्य का कवच पहन रक्खा है, ऊपर के हाथों में धारण किए गए आयुध (शूल व खट्वांग) शिव के प्रतीक हैं व नीचे के दोनों हाथों में 'कमल' सूर्य के। देवता के सिर पर मुकुट सूर्य का सूचक है। इस आशय की स्वतन्त्र प्रतिमाएँ अभी तक अन्यत्र नहीं मिली हैं, यद्यपि 'मार्त्तण्ड भैरव' एक लघ्वाकृति एक अलंकृत शिलापट्ट पर खुदी है जो आजकल अमरीका के लॉस-एन्जल्स की प्रदर्शनी में रक्खी गई थी। वह भी राजस्थानी कलाकृति प्रतीत होती है। नागदा के सास-मंदिर में सभा-मण्डप के बाहर दाहिनी ओर एक मूर्ति **गजेन्द्रमोक्ष** संवाद की सूचक है। यहाँ विष्णु के अतिरिक्त पास में 'गज' प्रदर्शित है जिसे जलग्राह ने सताया था। राजस्थान की मूर्तिकला में यह अभिप्राय अन्य किसी स्थान पर

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभी तक नहीं देखा गया है, यद्यपि भारतीय गुप्तयुगीन कला में देवगढ़ की प्रस्तर शिला इस संदर्भ की अद्भुत अभिव्यक्ति करती है।

मध्ययुग में नृसिंह-वराह-विष्णु की नानाविध प्रतिमाएँ मेवाड़ में ही नहीं अपितु समूचे राजस्थान व मध्यप्रदेश में बनायी गयी थीं। खजुराहो के लक्ष्मण-मंदिर के अन्दर तो इसी भाव की प्राचीन प्रतिमा आज भी पूजान्तर्गत है। इस आशय की मूर्तियाँ ८–९ वीं शती में काश्मीर-चम्बा-कुल्लू व कांगड़ा में बहुत लोकप्रिय हो चुकी थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में यह अभिप्राय विशेष राजस्थान में बहुत लोकप्रिय हो गया। अपराजितपृच्छा, देवतामूर्तिप्रकरण व रूपमण्डन आदि ग्रंथों में विष्णु की इस वर्ग की बहुत सी मूर्तियों का उल्लेख हुआ है जिनकी हाथों की संख्या ४, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २० तक है। मेवाड़ में इस वर्ग की मूर्तियाँ १६ वीं शती तक बनती रहीं, जैसा कि राजसमंद-कांकरोली की पाल पर बनी नौ चौकी के एक मण्डप की छत द्वारा स्पष्ट हो जाता है। कैलाशपुरी के एकलिंगजी के मंदिर के पास निर्मित मीरां-मंदिर के बाहरी ताकों में भी ऐसी प्रतिमाएँ जड़ी हैं—इनमें मध्यवर्ती भाग विष्णुवासुदेव का है व बाजू के मुखसिंह व वराह के। नागदा के पास मंदिर के बाहर बांयी ओर ऐसी गरुड़ारूढ़ मूर्ति जड़ी है और एक आयड़ संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही है। भीलवाड़ा जिले में 'बिजोलिया' के १२वीं शती के प्राचीन मंदिर भी ऐसे संदर्भ प्रस्तुत करते हैं, परन्तु अतिविलक्षण स्वरूप में। एक प्रतिमा तो बैकुण्ठ विष्णु की है और दूसरी उनकी शक्ति की, जहाँ मध्यवर्ती भाग **अश्व** का है और बाजू के मुख सिंह व वराह के। बैकुण्ठ की शक्ति तो अलौकिक है। इसी वर्ग की एक विष्णु-मूर्ति चित्तौड़ दुर्ग पर पुरातत्त्व विभाग के कार्यालय में सुरक्षित है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन मेवाड़ी कला-कृतियों में विष्णु के 'हयग्रीव' स्वरूप को प्रधानता दी गयी है। खजुराहो की बैकुण्ठ प्रतिमा स्थानिक संग्रहालय में भी सुरक्षित है जहाँ पीछे की ओर चौथा मुख उकेरा गया है और अश्व का है। खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर के गर्भगृह की ताकों में क्रमशः वराह-नृसिंह व हयग्रीव की प्रतिमाएँ इसी भाव की द्योतक प्रतीत होती हैं। श्रीनगर संग्रहालय की एक अपूर्व-मूर्ति में सिंह-मुख के स्थान पर अश्वाकृति बनी है। ये सब प्रतिमाएँ मेवाड़ी कला का अन्य क्षेत्रों से आदान-प्रदान सिद्ध करती हैं।

मेवाड़ क्षेत्र में कुरावड़ के पास 'जगत' ग्राम का **'अम्बिका मन्दिर'** तो राजस्थान का 'खजुराहो' है—यह १०वीं शती में विद्यमान था जैसा कि स्तम्भ पर के संवत् १०१७ के शिलालेख द्वारा स्पष्ट हो चुका है। कलाकौशल की दृष्टि से भी यह बहुत भव्य है। यह ग्राम के बाहर स्थानिक माध्यमिक पाठशाला के सामने विद्यमान है। पूर्व की ओर से प्रवेश करते ही प्रवेश-मण्डप आता है जिसके द्वार-स्तम्भों पर मातृका-प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इनमें 'वराही' के एक हाथ में 'मत्स्य' विद्यमान है जो तांत्रिक विचारधारा का सूचक है। प्राचीन भारतीय साहित्य में 'वाराही रोहित-मत्स्यकपालधरा' उल्लेख द्वारा मत्स्य की पुष्टि होती है। इस प्रवेश-मण्डप की छत पर **समुद्र-मंथन** अभिप्राय खुदा है और बाहरी दीवारों पर प्रेमालाप-मुद्रा में नर-नारी। यहीं कुछ व्यक्ति कंधों पर 'कावड़' (बहंगी) रखकर बोझ उठाते हुए प्रदर्शित हैं। आगे आंगन है और फिर सुविशाल अम्बिका-भवन। मंदिर के बाहरी भागों पर महिषमर्दिनी दुर्गा की नानाविध भव्य मूर्तियाँ विद्यमान हैं। निज गर्भगृह के पीछे की प्रधान ताक में भी देवी महिष (राक्षस का वध करती दिखाई देती है—उसके पास कशु (Parrot) की विद्यमानता द्वारा **'शुकप्रिया अम्बिका'** भाव की पुष्टि होती है। सभा मण्डप के बाहर की एक अन्य मूर्ति में देवी पुरुष रूप में प्रस्तुत। राक्षस से युद्ध कर रही है जो प्रायः बहुत ही कम स्थानों पर उपलब्ध है। महा बलिपुरम् व उड़ीसा की कला में महिष राक्षस को पुरुष रूप में अवश्य बताया गया है परन्तु वहाँ उसका मुख महिष का है और सींग भी। जगत की इस मूर्ति में राक्षस पूर्णरूपेण पुरुष विग्रह में प्रस्तुत है—वहाँ सींगों का भी सर्वथा अभाव है। इसी क्रम में जगत की अन्य ताकें सरस्वती, गोधासना गौरी, चामुण्डा व द्विबाहु दिक्पालों की प्रतिमाओं के साथ-साथ सुरसुन्दरी प्रतिमाएँ नानाविध मुद्राओं में प्रस्तुत करती हैं। कहीं अलस कन्या है तो कहीं शिशु को हाथों पर उठाए रमणी, अन्यत्र वह सद्यस्नाता व रूठी हुई रमणी के रूप में विद्यमान है। उनकी भावभंगिमा व वेशभूषा तो खजुराहो की कला की तुलना में किसी भी प्रकार कम आकर्षक नहीं है। इस मंदिर के प्रवेश व सभा-मण्डप के ऊपर बाहर की ओर भी कुछ देवी-प्रतिमाएँ जड़ी हैं जो दुर्गा के अन्य स्वरूपों की अभिव्यक्ति करती हैं। उत्तरी-भारत में इस वर्ग के अन्य दुर्गा-भवन की सतत प्रतीक्षा बनी रहेगी। जगत के अम्बिका मंदिर के गर्भगृह के बाहर बांई ओर अधिष्ठान की ताक में **नारायणी दुर्गा** प्रतिमा विद्यमान है। इस प्रेतासना देवी के हाथों में विष्णु के सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुध विद्यमान हैं। प्राचीन पौराणिक साहित्य के नारायणी-दुर्गा भाव को चरितार्थ करने वाली यह राजस्थानी प्रतिमा अपने वर्ग की बहुमूल्य कृति है, यद्यपि उड़ीसा में भुवनेश्वर की कला में भी कुछ ऐसी मूर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। जगत के अम्बिका-मंदिर के सभा-मण्डप में 'नृत्यगणपति' की भव्य प्रतिमा सफेद पत्थर की बनी है और गणेश को 'चतुर' मुद्रा में प्रदर्शित करती है। मेवाड़ की यह गणेश मूर्ति भी अपने वर्ग की महत्त्वपूर्ण कला-निधि है। ऐसी स्वतन्त्र प्रतिमाएँ बहुत ही कम संख्या में मिलती हैं। निश्चित ही जगत की शिल्प-कला व प्रस्तर-प्रतिमाएँ मध्यकालीन राजस्थानी कला के गौरव की सामग्री है।

आयड़ ग्राम के मीरां-मंदिर के बाहर जुड़े हुए कृष्णलीला फलक का उल्लेख किया जा चुका है। मेवाड़ की प्राचीन मूर्तिकला में (१५वीं शती से पूर्व) कृष्ण-जीवन सम्बन्धी संदर्भ अत्यल्प संख्या में उपलब्ध हैं। नागदा के सास-मंदिर के सभा-मण्डप के स्तम्भों पर रामायण सम्बन्धी दृश्य खुदे हैं परन्तु मेवाड़ी मंदिर के बाहरी भागों में इस प्रकार की शिलाएँ प्रायः नगण्य हैं। बहू—मंदिर के गर्भगृह के बाहर एक लघु मूर्ति **रावणानुग्रह** भाव को चरितार्थ करती हैं। यहाँ कैलाश पर्वत पर विराजमान शिव-पार्वती को लंकेश रावण ने उठा रखा है। कला की दृष्टि से यहाँ तक्षण बहुत ही कम रोचक है।

मेवाड़ की प्राचीन मूर्तिकला की यह संक्षिप्त झांकी समूचे राजस्थान की ही नहीं अपितु भारत की शिल्पकला में अपना महत्त्वपूर्ण अस्तित्व रखने में पूर्णतया समर्थ है। विदेशी आक्रमणों के थपेड़े खाकर भी इस प्रदेश के देवभवन व प्रस्तर प्रतिमाएँ आज भी पर्याप्त मात्रा में बचे हैं। यह कलात्मक धारा ११वीं शती के उपरान्त भी मेवाड़ में बहती रही। १५वीं शती में महाराणा कुम्भा ने समय-समय पर प्रोत्साहन प्रदान किया था। इतना ही नहीं उनके समय के दो राजशिल्पी-परिवार बहुत सक्रिय बने रहे। चित्तौड़ दुर्ग पर सूत्राधार **जइता** व उसके पुत्रों ने **कीर्तिस्तम्भ** का निर्माण किया और दूसरी ओर खेती पुत्र सूत्रधार 'मण्डन' नागदा एवं कुंभलगढ़ के शिल्प-कार्यों की देख-रेख करता था। दोनों ही परिवार कुशल कलाकार थे। पर्याप्त मात्रा में प्रेरणा लेकर सूत्रधार मण्डन ने अनेकों शिल्प एवं स्थापत्य विषयक ग्रंथों की रचना भी की जिनमें रूप मण्डन, देवतामूर्तिप्रकरण, राजवल्लभ, राजाप्रासाद······आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मण्डन के उत्तराधिकारियों ने उदयपुर के महलों, जगदीश मंदिर व राजसमुद्र की नौचौकी के निर्माण कार्य में अतुल सहयोग प्रदान कर मेवाड़ के प्राचीन शिल्प व हस्तकला-कौशल को अक्षुण्ण बनाए रखा। उनकी अनेक कृतियाँ भारतीय मूर्तिकला की महत्त्वपूर्ण निधि के रूप में आज तक सुरक्षित हैं।

☆☆

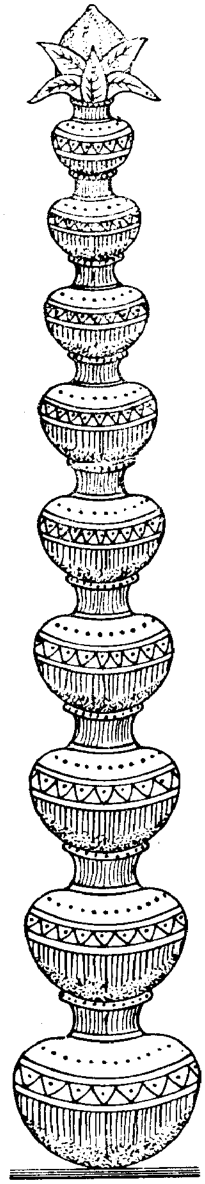

साधना की पगडंडी पहाड़ की चढ़ाई के समान है, यह इतनी संकड़ी है कि इसके दोनों ओर गहरी खाइयां हैं, एक ओर राग की गहरी खाई है दूसरी ओर द्वेष की।

साधक वह है जो संभल-संभल कर कदम धरता है, और सावधानी पूर्वक चलता हुआ अपने गंतव्य पर पहुँच जाता है।

—'अम्बागुरु सुवचन'

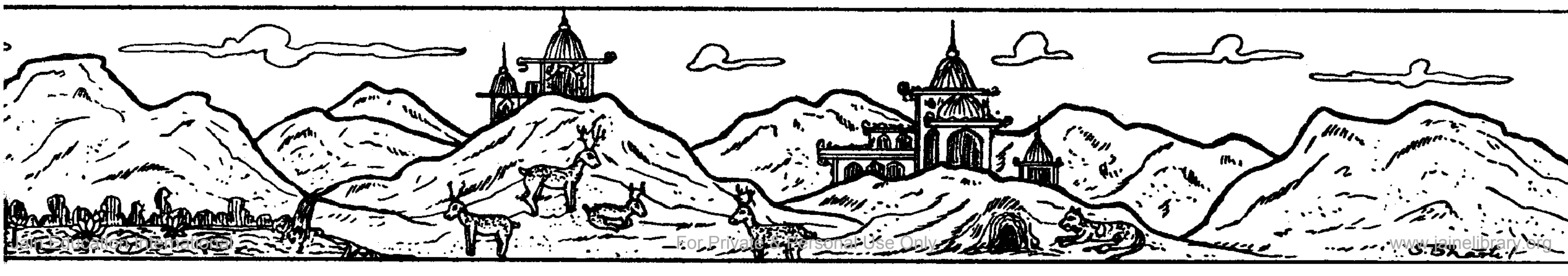

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org